राम कुमार बर्नवाल

बनाम

राम लखन (मृतक)

14 मई, 2007

[डॉ. अरिजीत पसायत, लोकेश्वर सिंह पंटा, जे.जे.]

उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 - धारा 21 के अन्तर्गत मकान मालिक-अपीलार्थी द्वारा रिलीज याचिका-निर्धारित प्राधिकारी द्वारा खारिज-अपीलीय न्यायालय द्वारा आदेश बरकरार रखा गया -उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका, जिसके लंबित रहने के दौरान, मकान मालिक ने पश्चातवर्ती घटना/बदली हुई परिस्थिति बताई - उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भले ही यह पाया जाता है कि निचली अदालतों के निर्णय कानूनी रूप से गलत थे, मामले को निर्धारित प्राधिकरी को प्रतिप्रेषित करने की आवश्यकता है क्योंकि रिलीज आवेदन बहुत पहले दायर किया गया था और सद्भाविक आवश्यकता और तुलनात्मक कठिनाई समय बीतने के साथ बदल गई थी- रिट याचिका खारिज की गई और मकान मालिक को नया रिलीज आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई - अभिनिर्धारितः उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत था-उच्च

न्यायालय द्वारा रिट याचिका का संक्षिप्त तरीके से निपटारा करना उचित नहीं था- मामला नए सिरे से विचार करने के लिए प्रतिप्रेषित किया गया - सिविल प्रक्रिया- कार्यवाही लंबित होने के दौरान की पश्चातवर्ती घटनाओं की सुसंगतता- भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226.

अपीलार्थी ने विवादित दुकान का मकान मालिक होने का दावा करते हुए उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21 के अन्तर्गत रिलीज याचिका दायर की। निर्धारित प्राधिकारी ने परिसर का मुआयना करने के लिए नियुक्त किये गये आयुक्त की रिपोर्ट के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि याचिका पोषणीय नहीं थी। प्रथम अपीलीय प्राधिकारी ने निर्धारित प्राधिकारी के आदेश को बरकरार रखा। अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की, जिसके लंबित रहने के दौरान, अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के ध्यान में एक पश्चातवर्ती घटना/बदली हुई परिस्थिति लाई। उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भले ही यह पाया जाता है कि निचले न्यायालयों के निर्णय विधिक रूप से गलत हैं, मामले को निर्धारित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित करने की आवश्यकता है क्योंकि रिलीज याचिका एक चौथाई शताब्दी पहले दायर की गई थी और समय के साथ सद्भावी आवश्यकता व तुलनात्मक कठिनाई बदल गई थी। रिट याचिका अपीलार्थी को नई रिलीज याचिका पेश करने की स्वतंत्रता के साथ खारिज

कर दी गई।

अपील स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

1. कार्यवाही लंबित रहने के दौरान हुई पश्चातवर्ती घटनाओं की प्रासंगिकता से संबंधित प्रश्न की इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में जांच की गई है। सिविल विधि का सामान्य नियम यह है कि पक्षकारों के अधिकार वाद संस्थित किये जाने के दिन की स्थिति में कायम रहते हैं अौर इसलिये, वाद की डिक्री को पक्षकारों के ऐसे अधिकारों से मेल खाना चाहिए जो मुकदमा प्रारंभ होने के समय थे। हालांकि, न्यायालय को निम्न शर्तों के अधीन पश्चातवर्ती घटनाआेंं पर विचार करने एवं तदनुसार अनुतोष को ढालने की शक्ति होती हैः (i) कि मूल रूप से चाहे गये अनुतोष पश्चातवर्ती घटनाओं के कारण अनुपयुक्त हो गये हैं या इन्हें प्रदान नहीं किया जा सकता है; (ii) कि ऐसी पश्चातवर्ती घटना या बदली हुए परिस्थितियों पर विचार करना मुकदमेबाजी को छोटा करेगा एवं इससे पक्षकारों के मध्य पूर्ण न्याय किया जा सकेगा; (iii) कि ऐसी पश्चातवर्ती की घटना को शीघ्रता से एवं प्रक्रियात्मक विधि के नियमों के अनुसार न्यायालय की जानकारी में लाया जाये जिससे विरोधी पक्ष के सामने कोई आश्चर्यजनक स्थिति न हो। [पैरा 9]

पासुपुलेती वेंकटेश्वरलु बनाम द मोटर एंड जनरल ट्रेडर्स, **[1975] एस.सी.सी.770;** *ओम प्रकाश गुप्ता बनाम रणबीर बी. गोयल*, **[2002] 2**

एस.सी.सी. 256 और *रमेश कुमार बनाम केशो राम,* **[1992] सप्ली. 2 एस.सी.सी. 623** पर विश्वास किया गया।

2. उच्च न्यायालय द्वारा संक्षिप्त तरीके से रिट याचिका का निपटारा करना उचित नहीं था। मामला पृष्ठभूमि तथ्यों में ऊपर दिए गये सिद्घान्तों को ध्यान में रखते हुए नये सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया गया [पैरा 11]

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः सिविल अपील सं. 2480/2007

इलाहबाद उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका सं. 9701/1983 में पारित अंतिम निर्णय व आदेश दिनांक 05.01.2004 के विरूद्घ

जसपाल सिंह, इम्तियाज अहमद, नगमा इम्तियाज, अभिषेक आनंद और वी.एन. रघुपति-अपीलार्थी की ओर से।

राजीव तलवार-प्रत्यर्थी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय **डॉ. अरिजीत पसायत, जे.** द्वारा दिया गया-

1. अनुमति दी गई।

2. इस अपील में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय को चुनौती दी गई है। आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि भले ही यह पाया जाता है कि अधीनस्थ न्यायालयों के

निर्णयों में विधिक त्रुटि है, मामले को निर्धारित प्राधिकारी को भेजे जाने की आवश्यकता है। अपीलार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 की धारा 21 के अन्तर्गत मकान मालिक होने का दावा करते हुए एक रिलीज याचिका दायर की गई थी।

3. अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत पृष्ठभूमि तथ्य इस प्रकार हैः-

अपीलार्थी असीफगंज मोहल्ला, आजमगढ़ शहर, उत्तर प्रदेश स्थित विवादित दुकान का स्वामी व मकान मालिक है। वर्ष 1947 में प्रत्यर्थी सं. 1 राम लखन को तत्कालीन मकान मालिक द्वारा रू. 40/- मासिक किराए पर दुकान में किरायेदार के रूप में रखा गया था। वर्ष 1952 में विवादित दुकान अपीलार्थी की मां श्रीमती प्यारी कुंवर द्वारा खरीदी ली गई। अपनी माँ की मृत्यु के बाद, अपीलार्थी संपति का मालिक बन गया। उस समय अपीलार्थी का परिवार बहुत छोटा था। चूंकि अपीलार्थी के पास कोई व्यवसायिक स्थान उपलब्ध नहीं था, इसलिए श्री जगन्नाथ की दुकान में व्यवसाय कर रहा था, जिसे उसने किराये पर लिया था। उच्च न्यायालय में प्रकरण लंबित रहने के दौरान अपीलार्थी को इस दुकान से बेदखल कर दिया गया एवं उसके पास व्यापार करने के लिए अन्य कोई परिसर नहीं है। अपीलार्थी के तीन पुत्र हैं। विवादित दुकान के अलावा अपीलार्थी के पास इससे लगती एक छोटी दुकान है। चूंकि अपीलार्थी का पुत्र अष्टभुजी प्रसाद

व्यापार करना चाहता था, यह दुकान उसके द्वारा काम में ली जा रही है। अपीलार्थी के दो अन्य पुत्र बेरोजगार हैं एवं उनमें से एक ने चार्टर्ड अकाउंटेंसी का कोर्स पूरा कर लिया है। व्यवसायिक स्थान उपलब्ध नहीं होने से इस पुत्र कमलेश्वर प्रसाद को 100 किलोमीटर दूर अपना कार्यालय स्थापित करना पड़ा। चूंकि प्रत्यर्थी सं.1 लगातार अपीलार्थी की मां को किराया आदयगी में व्यतिक्रम कर रहा था, व्यतिक्रम के आधार पर प्रत्यर्थी सं.1 की बेदखली का वाद (वाद सं. 23/1970) प्रस्तुत किया गया। यद्यपि वाद द्वितीय अपील तक डिक्री हुआ परन्तु इस न्यायालय ने अपील में निर्णय दिनांक 30.11.1976 द्वारा बेदखली का आदेश निरस्त कर दिया क्योंकि प्रत्यर्थी सं.1 ने अधिनियम की धारा 30 के अन्तर्गत किराया जमा करना प्रारंभ कर दिया था। वर्ष 1980 में अपीलार्थी ने अधिनियम की धारा 21(1)(a) के अन्तर्गत एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया। इसका प्रत्यर्थी द्वारा विरोध किया गया। निर्धारित प्राधिकारी ने परिसर का निरीक्षण करने के लिए नियुक्त आयुक्त की रिपोर्ट के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया कि बेदखली याचिका पोषणीय नहीं थी। प्रथम अपीलीय प्राधिकारी ने निर्धारित प्राधिकारी के अस्वीकृति के उक्त आदेश को बरकरार रखा। अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की जिसमें निर्धारित प्राधिकरी के आदेश की पुष्टि करने वाले अपीलीय प्राधिकारी के निर्णय व आदेश दिनांक 22.4.1983 की वैधता को चुनौती दी गई। अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के संज्ञान में यह लाया कि उसे उस किरायेशुदा परिसर से

बेदखल कर दिया गया है जहाँ वह व्यापार कर रहा था और इसलिए उसके पास अपनी आजीविका कमाने के लिए कोई परिसर नहीं बचा है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि भले ही यह पाया जाए कि निचले न्यायालयों के निष्कर्ष विधिक रूप से गलत हैं, मामला निर्धारित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित किया गया क्योंकि रिलीज प्रार्थना पत्र लगभग चौथाई शताब्दी पहले दायर किया गया था, एवं सद्भावी आवश्यकता व तुलनात्मक कठिनाई समय के साथ बदलती रहती है। रिट याचिका अपीलार्थी को नया रिलीज आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता के साथ खारिज कर दी गई।

4. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत है। विधि की यह सुस्थापित स्थिति है कि पश्चातवर्ती घटनाओं का संज्ञान लिया जा सकता है। यद्यपि उच्च न्यायालय ने पश्चातवर्ती घटनाओं की सुसंगता का संदर्भ दिया है परन्तु यह निष्कर्ष गलत है कि भले ही निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णय और आदेश विधिक रूप से गलत हों, मामले को निर्धारित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित करना ही होगा। विधि में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। वास्तव में, यह देखने के बाद कि रिलीज आवेदन लगभग चौथाई सदी पहले दायर किया गया था, यह वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है कि उच्च न्यायालय ने मामले का फैसला करने के बजाय नए सिरे से रिलीज

आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता देते हुए रिट याचिका को खारिज कर दिया। दूसरे शब्दों में, मुकदमेबाजी को संक्षिप्त करने के बजाय उच्च न्यायालय के आदेश का अर्थ होगा मुकदमेबाजी को अनावश्यक रूप से लंबा करना।

5. दूसरी ओर प्रत्यर्थी के लिए विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय और निचली अदालतों के आदेशों का समर्थन किया है।

6. यह ध्यान देने वाली बात है कि इस न्यायालय में कार्यवाही लंबित रहने के दौरान मूल किरायेदार की मृत्यु हो गई तथा इस न्यायालय के आई.ए. सं.3 के आदेश दिनांक 16.8.2005 के अनुरूप उसके विधिक उत्तराधिकारी प्रतिस्थापित किये गये हैं।

7. कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान हुई पश्चातवर्ती घटनाओं की प्रासंगिकता से संबंधित प्रश्न की इस न्यायालय द्वारा कई मामलों में जांच की गई है।

8. *पासुपुलेती वेंकटेश्वरलु बनाम द मोटर एंड जनरल ट्रेडर्स*, [1975] 1 एस.सी.सी. 770 में यह अभिनिर्धारित किया गया थाः

> "3.अपने मुवक्किल को बचाने के लिए श्री के. एस. राममूर्ति द्वारा दो निवेदन किये गये हैं। उन्होंने तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय के लिए पश्चातवर्ती घटनाओं का

संज्ञान लेना अवैध था, क्योंकि वे विनाशकारी साबित हुई। उनका दूसरा तर्क है कि जब उच्च न्यायालय ने एक बार यह अभिनिर्धारित किया कि अपीलेट अधिकरण ने मामले को किराया नियंत्रक को प्रतिप्रेषित करने में अवैधानिकता की थी, पूरी बेदखली कार्यवाही खारिज नहीं की जानी चाहिए थी, यह उससे भी बड़ा दुर्भाग्य होगा, अगर वह उच्च न्यायालय में गया ही नहीं होता।"

4. हमें यह तर्क सारहीन लगते हैं। प्रथम, यह कार्यवाही प्रारंभ होने के बाद अस्तित्व में आई परिस्थितियों के संदर्भ में क्षेत्राधिकार और औचित्य के बारे में है। यह हमारे प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र का बुनियादी आधार है कि अनुतोष के अधिकार को उस दिन अस्तित्व में माना जाना चाहिए जब कोई दावेदार कानूनी कार्यवाही शुरू करता है। यह सिद्घान्त भी समान रूप से उतना ही स्पष्ट है कि प्रक्रिया, न्यायिक प्रक्रिया की दासी है, न कि मालकिन। यदि विवाद के बाद उत्पन्न हुआ तथ्य तत्परतापूर्वक अधिकरण के संज्ञान में लाया जाता है तो ऐसी घटनाओं के प्रति आंखें बंद नहीं की जा सकती हैं जो डिक्रीटल उपचार को वृथा करती हों या अर्थहीन बनाती हों। साम्या सारवान न्याय के लिए प्रक्रियात्मक नियमों को ढालने को उचित ठहराती है जहां किसी विशिष्ट प्रावधान या निष्पक्षता का उल्लंघन नहीं हो एवं निसंदेह, जहां अयोग्य करने वाले कारक या

न्यायसंगत परिस्थितयां नहीं हों। न ही हम अद्यतन तथ्यों का संज्ञान लेने की शक्ति को विचारण न्यायालय तक सीमित करने पर विचार कर सकते हैं। यदि मुकदमेबाजी लंबित है तो यह शक्ति अस्तित्व में रहती है। इस बिंदु पर निर्णय बहुत हैं, यहां तक कि स्थितियों के अनुसार इस न्यायसंगत नियम के अनुप्रयोग असंख्य हैं। हम इस प्रस्ताव की पुष्टि करते हैं कि पक्षकार द्वारा दावा किए गए अधिकार या उपचार को न्यायसंगत और सार्थक बनाने के लिए तथा साथ ही इन्हें विधिक व तथ्यात्मक रूप से वर्तमान स्थिति के अनुरूप बनाने के लिए न्यायालय घटनाओं और परिवर्घनों (जो कार्यवाही संस्थित करने के बाद के हों) का सतर्कता से संज्ञान ले सकता है एवं कई मामलों ऐसा अवश्य करना चाहिए बशर्ते दोनों पक्षों के लिए निष्पक्षता के नियमों का ईमानदारी से पालन किया गया हो। दोनों अवसरों पर उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण में सही रूप से यही मत अपनाया। जैसा कि उच्च न्यायालय ने दो बार इंगित किया है, प्रकरण के लंबित रहने के दौरान भूस्वामी द्वारा एक अन्य आवास का बाद में पुनर्प्राप्त होना, अपने आप में धारा 10(3)(iii) में वर्णित प्रतिबंध के दृष्टिकोण से बेदखली के अधिकार से संबंधित एक महत्वपूर्ण बिन्दु है। हम न्याय या तथ्य के इस निष्कर्ष को बदलने के लिए तैयार नहीं हैं।

5. हमने जो कानून बनाया है वह प्राचीन काल का है। हम केवल *लछमेश्वर प्रसाद शुक्ल बनाम केश्वर लाल चौधरी* ए.आई.आर. (1941)

एफ.सी. 5 का उल्लेख करेंगे जो इस बिन्दु पर एक प्रमुख मामला है। ग्वेयर सी.जे., ने उक्त मामले में *पैटरसन बनाम अलबामा राज्य* (294 यू. एस. 600, 607) में संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए नियम को संदर्भित किया है:

हमने बार-बार अभिनिर्धारित किया है कि हमारे अपीलीय क्षेत्राधिकार में हमें न केवल समीक्षाधीन निर्णय की त्रुटि को सुधारने की शक्ति है बल्कि मुकदमे को न्याय की आवश्यकता के अनुसार ऐसा व्यवस्थित करने की भी। और न्याय की आवश्यकता क्या है, इसे तय करते समय, न्यायालय तथ्यों या विधि में हुए ऐसे किसी परिवर्तन पर विचार करने के लिए बाध्य है जो निर्यय पारित होने के बाद का है।

और कहा कि न्यायालय की शक्तियों के बारे में इस दृष्टिकोण की एक बार फिर तत्समय नवीन मामले *मिनेसोटा बनाम नेशनल टी कं.* 309 यू.एस. 551, 555. में पुनः पुष्टि की गई। सुलेमान जे. ने इसी मामले (ए.आई.आर. 1941 एफ.सी. 5) में अंगेजी केसों पर विश्वास करते हुए यह मत व्यक्त किया कि अपील पुनः सुनवाई के रूप में होती है और न्यायालय ऐसा आदेश कर सकता है जाे प्रथम बार के न्यायालय द्वारा किया जा सकता था, यदि अपील की सुनवाई के दिन मामले की सुनवाई उनके द्वारा की जाती। वरदाचारियार जे. ने इसी बिंदु पर थोड़ा और विस्तारपूर्वक विचार किया है। हम एक अंश को उद्धृत करके स्वयं को

संतुष्ट कर सकते हैं जो इस बिंदु को प्रकाशमय बनाता है (पृ. 103 पर):

अपील की प्रकृति पुनः सुनवाई की होने के सिद्घान्त के आधार पर इस देश के न्यायालयों ने अनेक मामलों में माना है कि अपील में प्रकरण में दिये जाने वाले अनुतोष को परिवर्तित हुए अपील न्यायालय आक्षेपित डिक्री के बाद अस्तित्व में आने वाले तथ्यों व घटनाआेंं पर भी विचार कर सकता है।"

9. ***ओम प्रकाश गुप्ता बनाम रनबीर बी. गोयल*, (2002) 2 एस.सी.सी. 256 के मामले में** इस न्यायालय का निर्णय भी इसी तरह का है। अन्य बातों के साथ इस मामले में निम्न सम्प्रेक्षण किया गयाः

> "11. सिविल विधि का सामान्य नियम यह है कि पक्षकारों के अधिकार वाद संस्थित किये जाने के दिन की स्थिति में कायम रहते हैं और इसलिये, वाद की डिक्री को पक्षकारों के ऐसे अधिकारों से मेल खाना चाहिए जो मुकदमा प्रारंभ होने के समय थे। हालांकि, न्यायालय को निम्न शर्तों के अधीन पश्चातवर्ती घटनाओं विचार करने एवं तदनुसार अनुतोष को ढालने की शक्ति होती हैः (i) कि मूल रूप से चाहे गये अनुतोष पश्चातवर्ती घटनाओं के कारण अनुपयुक्त हो गये हैं या इन्हें प्रदान नहीं किया जा सकता है; (ii) कि ऐसी पश्चातवर्ती घटना या बदली हुए परिस्थितियों पर विचार

करना मुकदमेबाजी को छोटा करेगा एवं इससे पक्षकरों के मध्य पूर्ण न्याय किया जा सकेगा; (iii) कि ऐसी पश्चातवर्ती की घटना को शीघ्रता से एवं प्रक्रियात्मक विधि के नियमों के अनुसार न्यायालय की जानकारी में लाया जाये जिससे विरोधी पक्ष के सामने कोई आश्चर्यजनक स्थिति न हो। *पासुपुलेती वेंकटेश्वरलु बनाम द मोटर एण्ड जनरल ट्रेडर्स* (1975) एस.सी.सी. 770 में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि मुकदमे के बाद पैदा होने वाले ऐसे तथ्य न्यायालय की जानकारी में आते हैं जो अनुतोष के अधिकार या इसे बदलने के तरीके पर सारभूत प्रभाव रखते हैं एवं यह शीघ्रता से न्यायालय की जानकारी में लाये जाते हैं तो ऐसे तथ्यों के प्रति आंख बंद नहीं की जा सकती हैं। ऐसे मामलों में न्यायालय प्रक्रियात्मक नियमों को ढाल सकता है, यदि किसी विशिष्ट प्रावधान या निष्पक्षता का उल्लंघन नहीं होता हो एवं अयोग्य करने वाले कारक या न्यायसंगत परिस्थितयां नहीं हों क्योंकि ऐसा करने से सारवान न्याय होगा। न्यायालय ने कृष्णा अय्यर जे. के माध्यम से यह पुष्ट किया कि जब तक मुकदमा लंबित है, न्यायालय सारवान न्याय को बढ़ावा देने के लिए अद्यतन तथ्यों पर विचार कर सकता है। हालांकि न्यायालय ने सतर्क कियाः(i)

घटना ऐसी होनी चाहिए जो डिक्रीटल उपचार को वृथा करती हो या अर्थहीन बनाती हो, (ii) यदि कोई विशिष्ट प्रावधान या निष्पक्षता का उल्लंघन नहीं होता हो तो प्रक्रियात्मक नियमों को ढाला जा सकता है, (iii) पश्चातवर्ती घटनाओं व परिवर्धनों का ऐसा प्रसंज्ञान सतर्कता से होना चाहिए एवं (iv) दोनों पक्षों के लिए निष्पक्षता के नियमों का ईमानदारी से पालन होना चाहिए।

12. ऐसी पश्चातवर्ती घटना विशुद्घ रूप से विधि की हो सकती है या यह तथ्य पर आधारित हो सकती है। पहले मामले में, न्यायालय घटना की न्यायिक अवेक्षा कर सकता है एवं उन पर कार्यवाही करने से पहले पक्षकारों को यह बताया जावे कि विधि में हुआ बदलाव कैसे उनके अधिकारों व दायित्वों को प्रभावित करेगा और मुकदमे या अनुतोष को विधि के दायरे में लाने के लिए संशोधित किया जावे या बदला जावे। बाद वाले मामले में, जो पक्षकार ऐसी पश्चातवर्ती घटना पर भरोसा करता है, जिसमें ऐसे तथ्य शामिल हैं जो उनके अस्तित्व या प्रभाव के लिए विवाद की सीमा से बाहर नहीं हैं, उसे आदेश 6 नियम 17 सी.पी.सी. के अन्तर्गत अभिवचनों में संशोधन कराना होगा। न्यायालय

अभिवचनों में ऐसे संशोधनों की अनुमति प्रदान कर सकता है क्योंकि ऐसा करना पक्षकारों के मध्य वास्तविक विवादित प्रश्नों के निर्णयन हेतु आवश्यक होगा।*ट्रोजन एण्ड कं. बनाम आर.एम.एन.एन. नागप्पा चेट्टियार* ए.आई.आर. (1953) एस.सी. 253 में इस न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी मामले का निर्णय अभिवचनों के बाहर जाकर नहीं किया जा सकता है, अभिवचनों में संशोधनों के बिना न्यायालय अनुतोष को संशोधित नहीं कर सकता है या इसे बदल नहीं सकता है। *श्री महन्त गोविन्द राव बनाम सीता राम केशो व अन्य* (1898) 25 इंडियन अपील्स 195 (पीसी) में न्यायमूर्ति द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि एक नियम के रूप में ऐसा अनुतोष नहीं दिया जा सकता है जो अभिवचनों पर आधारित नहीं हो।

13. न्यायालय द्वारा पश्चातवर्ती घटनाओं का संज्ञान लेने की शक्ति, विशेषकर अपील के प्रक्रम पर, *छोटे खान बनाम मोहम्मद ओबेदल्ला खान* ए.आइ.आर. (1953) नागपुर 361 में नागपुर उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष विचारार्थ आई जिसकी अध्यक्षता न्यायमूर्ति सिन्हा(तत्समय के

न्यायमूर्ति) द्वारा की गई थी। हिदायतुल्ला जे. (तत्समय के न्यायमूर्ति) ने न्यायिक राय का पुनर्विलोकन कर अभिनिर्धारित किया कि किसी भी वाद का विचारण इसके प्रत्येक प्रक्रम पर उसी वाद हेतुक पर किया जायेगा जो वाद के प्रारंभ होने के समय विद्यमान था। निसंदेह, अन्तर पक्षीय मुकदमेबाजी को छोटा करने के लिए न्यायालय पश्चातवर्ती घटनाओं का संज्ञान ले सकते हैं एवं कुछ मामलों में अवश्य लेना चाहिए परन्तु इससे प्रतिवादी को लाभ नहीं दिया जा सकता है क्योंकि वादी के अधिकार एक तीसरे पक्षकार ने अर्जित कर लिये हैं। यह सिद्घान्त अपने आप में अपवाद स्वरूप प्रकृति का है एवं बहुत विशेष परिस्थितियों में उपयोग में लिया जाना चाहिए। जहां निर्णय के विरूद्घ अपील हो, वहां इसे और भी अधिक सख्ती से लागू किया जाना चाहिए। न्यायमूर्ति ने सर आशुतोष मुखर्जी जे. द्वारा कई प्रकरणों में दिये गये विधि के इस कथन को उदद्घृत किया कि केवल वादी द्वारा अपना टाइटल मुकदमे के लंबित रहने के दौरान खो देना उसके प्रतिद्वंदी को जीतने की अनुमति दिये जाने का कारण नहीं हो सकता है, यदि संबंधित अधिकार प्रतिद्वंदी में नहीं बल्कि किसी तीसरे पक्षकार में निहित हैं। हस्तगत मामले में प्रतिवादी

अपीलार्थी ने सरसरे तौर पर पेश शपथ पत्र में केवल वादी प्रत्यर्थी के विरूद्घ हुडा(HUDA) द्वारा कार्यवाही प्रारंभ करने का तथ्य बताया है। उसने न्यायालय से यह अनुरोध भी नहीं किया है कि इस पश्चातवर्ती घटना का संज्ञान लिया जावे और तदनुसार अनुतोष को बदला जावे या अपीलाधीन निर्णय द्वारा वादी प्रत्यर्थी को दी गई राहत प्रदान करने से इंकार किया जावे, अभिवचनों में संशोधन की मांग करना तो दूर की बात है। प्रतिवादी अपीलार्थी द्वारा बताई गई पश्चातवर्ती घटना मूलतः केवल एक तथ्यात्मक घटना है एवं इसका तब तक संज्ञान नहीं लिया जा सकता है जब तक इसे स्थापित प्रक्रियात्मक नियमों के अनुसार न्यायालय की जानकारी में नहीं लाया जावे जिससे वादी प्रत्यर्थी को अपीलार्थी द्वारा रखे गये नये केस पर अपना पक्ष रखने का अवसर मिलता। हमें नहीं लगता कि अपीलार्थी द्वारा बहुत सरसरे तरीके से प्रस्तुत किये गये तथ्य का संज्ञान लेना इस न्यायालय के लिए उचित होगा। तथ्य यह है कि यह विवाद भूस्वामी व किरायेदार का विवाद है तथा हम निचले न्यायालय व उच्च न्यायालय द्वारा स्वामित्व सर्वोपरि के सिद्घान्त के आधार पर वादी प्रत्यर्थी को प्रदान किये गये अनुतोष को पलट नहीं सकते क्योंकि

यह नहीं कहा जा सकता है कि एचयूडीए द्वारा वादी प्रत्यर्थी के विरूद्घ प्रारंभ की गई कार्यवाही ने अंतिम रूप प्राप्त कर लिया है या यह ऐसी कार्यवाही है जहां वादी प्रत्यर्थी के पास संभवतः कोई टिकाऊ बचाव नहीं है।"

10. पूर्व में *रमेश कुमार बनाम केशो राम* (1992) सप्ली. 2 एस.सी.सी. 623 में यह अभिनिर्धारित किया गया किः

"6. सामान्य नियम यह है कि किसी मुकदमे में पक्षकारों के अधिकार व दायित्व मुकदमे के प्रारंभ होने की अवस्था में निर्णीत किये जाते हैं। परन्तु इसका एक अपवाद है। जहां विधि या तथ्य की पश्चातवर्ती घटनाओं का पक्षकारों के अनुतोष प्राप्त करने के अधिकार या अनुतोष को बदलने वाले पहलुओं पर तात्विक प्रभाव हो तो न्यायालय को सतर्क रहते हुए ऐसे विधि या तथ्य के पश्चातवर्ती परिवर्तनों का संज्ञान लेकर अनुतोष को बदलने से नहीं रोका जा सकता है। *लक्ष्मेश्वर प्रसाद शुक्ल बनाम केश्वर लाल चौधुरी* ए.आई.आर.(1941) एफ.सी. 5 में मुख्य न्यायाधीश सर मौरिस ग्वेयर ने यह सम्प्रेक्षण कियाः (ए.आई.आर. पृष्ठ 6):

"परन्तु क्या न्यायालय अपीलाधीन निर्णय के बाद हुए विधायी परिवर्तनों पर विचार कर सकता है, इस प्रश्न के

संबंध में मैं यह इंगित करना चाहूंगा कि संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया नियम वही है जिसकी मैं इस न्यायालय के तीन सदस्यों को सिफारिश करता हूँ। *पैटरसन बनाम अलबामा राज्य* (1934) 294 यू.एस. 600 में हगहेस सी.जे. ने कहा हैः

"हमने बार-बार अभिनिर्धारित किया है कि हमारे अपीलीय क्षेत्राधिकार में हमें न केवल समीक्षाधीन निर्णय की त्रुटि को सुधारने की शक्ति है बल्कि मुकदमे को न्याय की आवश्यकता के अनुसार ऐसा व्यवस्थित करने की भी। और न्याय की आवश्यकता क्या है, इसे तय करते समय, न्यायालय तथ्यों या विधि में हुए ऐसे परिवर्तन पर विचार करने के लिए बाध्य है जो निर्यय पारित होने के बाद के हैं।"

और *पासुपुलेती वेंकटेश्वरलु बनाम द मोटर एंड जनरल ट्रेडर्स*, [1975] 1 एस.सी.सी. 770 में न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने कहा हैः (एस.सी.सी. पेज 772 पैरा 4)

"हमें यह तर्क सारहीन लगते हैं। प्रथम, यह कार्यवाही प्रारंभ होने के बाद अस्तित्व में आई परिस्थितियों के संदर्भ में क्षेत्राधिकार और औचित्य के बारे में है। यह हमारे

प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र का बुनियादी आधार है कि अनुतोष के अधिकार को उस दिन अस्तित्व में माना जाना चाहिए जब कोई दावेदार कानूनी कार्यवाही शुरू करता है। यह सिद्घान्त भी समान रूप से उतना ही स्पष्ट है कि प्रक्रिया, न्यायिक प्रक्रिया की दासी है, न कि मालकिन। यदि विवाद के बाद उत्पन्न हुआ तथ्य तत्परतापूर्वक अधिकरण के संज्ञान में लाया जाता है तो ऐसी घटनाआेंं के प्रति आंखें बंद नहीं की जा सकती हैं जो डिक्रीटल उपचार को वृथा करती हों या अर्थहीन बनाती हों। साम्या सारवान न्याय के लिए प्रक्रियात्मक नियमों को ढालने को उचित ठहराती है जहां किसी विशिष्ट प्रावधान या निष्पक्षता का उल्लंघन नहीं हो एवं निसंदेह, जहां अयोग्य करने वाले कारक या न्यायसंगत परिस्थितयां नहीं हों। न ही हम अद्यतन तथ्यों का संज्ञान लेने की शक्ति को विचारण न्यायालय तक सीमित करने पर विचार कर सकते हैं। यदि मुकदमेबाजी लंबित है तो यह शक्ति अस्तित्व में रहती है। इस बिंदु पर निर्णय बहुत हैं, यहां तक कि स्थितियों के अनुसार इस न्यायसंगत नियम के अनुप्रयोग असंख्य हैं।"

11. उपरोक्त स्थिति में उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका का संक्षिप्त

तरीके से निपटारा करना उचित नहीं था। तदनुसार हम विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश अपास्त करते हैं तथा मामला पृष्ठभूमि तथ्यों में ऊपर दिए गये सिद्घान्तों को ध्यान में रखते हुए नये सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित करते हैं। चूंकि मामला लंबे समय से लंबित है, हम उच्च न्यायालय से इस निर्णय की प्रति प्राप्त होने की दिनांक से चार माह की अवधि में मामले का निपटारा करने का अनुरोध करते हैं।

12. अपील उपरोक्त सीमा तक स्वीकार की जाती है। कोई हर्जा खर्चा नहीं लगाया जाता है।

अपील आंशिक रूप से स्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी हेमंत सिंह बघेला (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।